पैंतीस बोल का थोकड़ा।

साध्वीजी श्री ज्ञानश्री जी महाराज

श्री वल्लभश्री जी महाराज

के

सदुपदेश से

श्रीमती कस्तूरीबाई ने

प्रकाशित कराया।

बसन्त पञ्चमी वि० सं० १९८८ } वीर संवत् २४५८ { मूल्य सदुपयोग

मिलने का पता—
खरतरगच्छ का बड़ा उपाश्रय
रॉगड़ी चौक, बीकानेर ।

किञ्चिद्-वक्तव्य ।

सर्व स्वधर्मी भाइयों को सादर निवेदन किया जाता है कि—यह पैंतीस बोल का थोकड़ा सर्वोपयोगी होने से कई जगह से प्रकाशित हो चुका है, परन्तु इसमें यह विशेषता है कि—बालक से लेकर वृद्ध तक समझ सकें, ऐसी सरल सर्वोपयोगी भाषा में लिखा गया है।

साध्वी जी श्री ज्ञान श्री जी महाराज और श्री वल्लभ श्री जी महाराज के उपदेश से श्रीमती कस्तूराबाई श्राविका ने ज्ञान की वृद्धि के हेतु यह प्रकाशित कराया है। आशा है कि धार्मिकजन इससे लाभ उठा कर पुण्य के भागी बनेंगे।

प्रकाशक।

* श्री पञ्चपरमेष्ठिने नमः *

संक्षिप्त विवेचन सहित

पैंतीस बोल ।

पहिला ।

मनुष्य और देव आदि पर्याय की प्राप्ति के कारण को गति नाम कर्म कहते हैं। इस के चार भेद हैं—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवः—

१—बहुत पाप करने से नरक में (जहाँ कि प्रायः दुःख ही रहता है) जो जीव उत्पन्न होता है उसकी नरक गति होती है।

२—पशु, पक्षी और जलचर (मच्छी, मगर आदि) तिर्यञ्च गति के जीव कहलाते हैं।

३—स्त्री पुरुष और नारक मनुष्य गति के जीव कहलाते हैं।
४—अतिशय पुण्य के उदय से जो जीव देव बनते हैं वे देव गति वाले कहलाते हैं।

दूसरा।

एकेन्द्रिय आदि का पर्याय जिससे मिलता है उसे जाति नाम कर्म कहते हैं। यह पाँच प्रकार का है—एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

१—जिनके केवल शरीर ही होता है वे एकेन्द्रिय जाति के जीव कहलाते हैं। हवा, पानी, अग्नि, फल, वृक्ष पर्वत, ये सब एकेन्द्रिय जाति क जीव हैं।

२—जिन जीवों के शरीर और रसना (जीभ) होती है वे द्वीन्द्रिय जाति के जीव कहलाते हैं।

३—जिनके शरीर, रसना और नासिका होती है वे त्रीन्द्रिय जाति के जीव कहलाते हैं। चीटी, मकोडी और जूँ आदि त्रीन्द्रिय जाति वाले हैं।

४—जिनके शरीर, रसना, नासिका और आखें होती हैं वे चतुरिन्द्रिय जाति के जीव कहलाते हैं। मक्खी, मच्छर और बिच्छू आदि चतुरिन्द्रिय जाति वाले हैं।

५—जिनके शरीर, जीभ, नाक, आँख और कान होते हैं वे सब पचेन्द्रिय जाति के जीव कहलाते हैं। देवता, मनुष्य, नारकी और पशु पक्षी पचेन्द्रिय जाति के हैं।

तीसरा।

काय छः हैं—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायु काय, वनस्पतिकाय और त्रसकायः—

१—जिनका शरीर पृथ्वीरूप ही होता है वे पृथ्वीकाय के जीव कहलाते हैं। मिट्टी और पत्थर आदि पृथ्वी-काय के जीव हैं।

२—जिनका शरीर ही जल होता है वे जलकाय के जीव कहलाते हैं। ओला, कुए का पानी, बारिस का पानी और सब पानीमात्र जलकाय के जीव हैं।

३—जिनका शरीर ही अग्नि होता है वे अग्निकाय के जीव कहलाते हैं। दीपक की लौ और अँगार आदि अग्निकाय के जीव हैं।

४—जिनका शरीर पवन होता है वे वायुकाय के जीव कहलाते हैं। हवा और आँधी वायुकाय के जीव हैं।

५—वनस्पति ही जिनका शरीर होता है वे वनस्पतिकाय

के जीव कहलाते हैं। शाक, फल, फूल, पत्ते, वृक्ष और डाली, ये सब वनस्पतिकाय के जीव हैं।

६—जो चल फिर सकते हैं वे त्रसकाय के जीव कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय, ये सब त्रसकाय वाले हैं।

चौथा।

जिससे जीव पहिचाना जाता है उसे इन्द्रिय कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं—स्पर्श, रसन, घ्राण, चक्षु और कर्ण है —

१—जिससे छूकर ज्ञान होता है उस (शरीर) को स्पर्श न्द्रिय कहते हैं। ठण्डा, गर्म, मुलायम और खरदरा आदि स्पर्श इसी इन्द्रिय के द्वारा मालूम होते हैं।

२—जीभ को रसना इन्द्रिय कहते हैं। मीठा, खट्टा और कडुआ आदि रस इसी इन्द्रिय से मालूम होते हैं।

३—नासिका को घ्राणेन्द्रिय कहते हैं। सुगन्ध तथा दुर्गन्ध इसी घ्राणेन्द्रिय के द्वारा मालूम होती है।

४—आँखों को चक्षु इन्द्रिय कहते हैं। सफेद, लाल और पीला आदि जितने प्रकार के रंग हैं वे सब इसी चक्षु इन्द्रिय से मालूम होते हैं।

५—कानों को कर्णेन्द्रिय कहते हैं। सब प्रकार के शब्द इसी कर्णेन्द्रिय के द्वारा सुनाई देते हैं।

पाँचवाँ।

सचित पुद्गलों को यथायोग्य परिणत करने की जो एक विशेष शक्ति है उसको पर्याप्ति कहते हैं। यह छ प्रकार की होती है—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनः—

१—आहारिक वर्गणा का ग्रहण कर उसका रस बनाने की जो शक्ति है उसको आहारपर्याप्ति कहते हैं।

२—रस से खून, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और वीर्य, इस प्रकार सात धातुओं को बना कर शरीर को बनाने वाली शक्ति को शरीरपर्याप्ति कहते हैं।

३—धातुओं से स्पर्श और रसन आदि द्रव्येन्द्रियों को बनाने की जो विशेष शक्ति है उसे इन्द्रियपर्याप्ति कहते हैं।

४—श्वासोच्छ्वास के योग्य पुद्गल-वर्गणाओं का ग्रहण कर उन्हें श्वासोच्छ्वास के रूप में बदलने की शक्ति को श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति कहते हैं।

४—आहार को पचाने वाला तैजस शरीर होता है।

५—कर्म परमाणुओं का समुदाय (जिसका आत्मा के साथ सम्बन्ध है) कार्मण शरीर कहलाता है।

आठवाँ।

योग पन्द्रह प्रकार के होते हैं—चार मनोयोग, चार वचनयोग, और सात काययोग। मन, वचन और शरीर की क्रिया को योग कहते हैं।

१—जैसा देखा हो वा जैसा सुना हो वैसा ही सत्यरूप से सोचना मनोयोग है।

२—जैसा देखा हो वा सुना हो उससे विपरीत (उलटा-मिथ्या) सोचना असत्य मनोयोग है।

३—कुछ सचा और कुछ झूठा विचार करना मिश्र मनोयोग है।

४—जो सत्य भी न हो और असत्य भी न हो ऐसा गोलमाल विचार करना व्यवहार मनोयोग है।

५—जैसा देखा हो, सुना हो व विचारा हो, वैसा ही बोलना सत्य वचनयोग है।

६—सत्य से विपरीत अर्थात् झूठ बोलना असत्य वचन योग है।

७—कुछ सत्य और कुछ झूठ बात का कहना मिश्र वचनयोग है।

८—जो सत्य भी न हो और झूठ भी न हो ऐसी गोल माल बात का कहना व्यवहार वचनयोग है।

९—मनुष्यों और तिर्यंचों की उत्पत्ति के समय औदारिक शरीर बनाने में जो योग होता है उसे औदारिक मिश्र काययोग कहते है।

१०—औदारिक शरीर से जो योग होता है उसे औदारिक काययोग कहते हैं।

११—देवताओं और नारकियों की उत्पत्ति के समय वैक्रिय शरीर के बनाने में जो योग होता है उसे वैक्रिय मिश्र काययोग कहते हैं।

१२—वैक्रिय शरीर से जो योग होता है उसे वैक्रिय काययोग कहते हैं।

१३—आहारक शरीर के बनाने में मुनियों को जो क्रिया करनी पडती है उसे आहारक मिश्र काययोग कहते हैं।

१४—आहारक शरीर से जो क्रिया होती है उसे आहारक काययोग कहते हैं।

१५—जिससे कर्मपरमाणुओं के आने की क्रिया होती है उसे कार्मण काययोग कहते हैं।

नवाँ।

उपयोग बारह होते हैं—आठ ज्ञानोपयोग और चार दर्शनोपयोग। किसी चीज को जानने के लिये आत्मा की जो क्रिया होती है उसे उपयोग कहते हैं—

१—पाँचों इन्द्रियों में से किसी एक इन्द्रिय के द्वारा और मन के द्वारा जो बात जानी जाती है उसे मति ज्ञान कहते हैं।

२—शास्त्रों के पढने से सुनने से अथवा मनन करने से जो ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

३—अमुक सीमा में स्थित पौद्गलिक पदार्थों का इन्द्रियों की सहायता के विना जो ज्ञान होता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

४—ढाई द्वीप के अन्दर के मनुष्यों और तिर्यंचों के मन की बात इन्द्रियों की सहायता के विना जिस ज्ञान से जानी जाती है उसे मन पर्ययज्ञान कहते हैं।

५—इन्द्रियों की सहायता के विना सब तरह के रूपी

और अरूपी पदार्थों का जिससे ज्ञान होता है उसे केवलज्ञान कहते हैं।

६—मिथ्यात्व के सहित मतिज्ञान को (जिससे वस्तु का स्वरूप ठीक रीति से नहीं विचारा जाता है) मति अज्ञान कहते हैं।

७—मिथ्यात्व के सहित श्रुतज्ञान को (जिससे वस्तु का सत्य स्वरूप नहीं जाना जाता है)श्रुत-अज्ञान कहते हैं।

८—मिथ्यात्व के सहित अवधिज्ञान को विभङ्गज्ञान कहते हैं अर्थात् जिससे अमुक हद तक के पदार्थो के जानने में फर्क हो जाता है उसे विभङ्ग ज्ञान कहते हैं।

९—आँख से देखना अर्थात् आँख से वस्तु का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं।

१०—आँख के सिवाय शेष चार इन्द्रियों से वस्तु का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते हैं।

११—अमुक सीमा के भीतर स्थित रूपी वस्तुओं का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

१२—संसार के सब ही रूपी और अरूपी पदार्थों को जो सामान्यरीति से जानना है वह केवल दर्शन है।

दशवाँ ।

कर्म आठ होते हैं-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय —

१—ज्ञान को ढाँकनेवाले कर्म को ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

२—दर्शन को ढाँकने वाला कर्म दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

३—सुख और दुःख (साता, असाता) को उत्पन्न करने वाला कर्म वेदनीय कहलाता है।

४—पुद्गलों से बनी हुई एव नाश होने वाली वस्तुओं में मेरेपन को (ममत्व को) उत्पन्न करने वाले कर्म को मोहनीय कर्म कहते हैं।

५—एक पर्याय में नियत समय तक रखने वाले कर्म को आयुकर्म कहते हैं।

६—शरीर, रूप, रग और गति आदि को बनाना नाम कर्म का काम है।

७—मान के योग्य (उच्च) व अपमान के योग्य (नीच) दशा को बनाने वाला गोत्र कर्म है।

८—देने में तथा प्राप्ति में, खाने पहिनने में और बल को काममें लाने में जो विघ्न डालता है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

ग्यारहवाँ।

गुणस्थान चौदह होते हैं—मिथ्यात्व,सासादन,मिश्र, अविरत सम्यग् दृष्टि, देशविरति, प्रमत्त, अप्रमत्त, निवृत्ति-करण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली, आचरण और भावों के द्वारा जीवों की जो स्थिति होती है उसे गुणस्थान कहते हैं—

१—वस्तु के यथार्थ (असली) स्वरूप को न मान कर उससे विपरीत (उलटा) मानने वाले को मिथ्यात्वी कहते हैं, उस की स्थिति का नाम मिथ्यात्व गुण स्थान है।

२—सम्यक्त्व से गिरने पर बीच में भावों की थोड़े समय तक जो स्थिति होती है उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं।

३—सत्य और असत्य दोनों को समान ही समझने वालों की स्थिति जहाँ होती है, अर्थात् जहाँ वास्तविक तत्व

से स्नेह नहीं होता और मिथ्यातत्व से अप्रीति नहीं होती, ऐसी स्थिति को मिश्र गुणस्थान कहते हैं।

४—जिस स्थिति में देव, गुरु और धर्म के ऊपर श्रद्धा तो होती है परन्तु व्रत प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) नहीं होता है उसको सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं।

५—जिस स्थिति में थोड़ा (एक देश) त्याग होता है (व्रत होता है) उस को देशविरति गुणस्थान कहते हैं। इस गुणस्थान वाले को अणुव्रती भी कहते हैं।

६—पाँच महाव्रतों* का जिस स्थिति में प्रमाद के सहित पालन किया जाता है उसको सर्वविरति या प्रमत्त गुणस्थान कहते हैं।

७—जिस स्थिति में विशेष अर्थात् उत्तम भाव होते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस में प्रमादरहित व्रतों का पालन किया जाता है, उसको अप्रमत्त गुणस्थान कहते हैं।

८—जिस स्थिति में अपूर्व (जो पहिले कभी नहीं आये हों ऐसे) निर्मल भाव आते हैं उसको अपूर्वकरण या

* व्रतों का वर्णन आगे किया जावेगा।

निवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

९—जिस स्थिति में लोभ के स्थूल (मोटे) विभाग (खड, टुकड़े) करके दाब दिये जाते हैं, या नष्ट कर दिये जाते हैं उसको अनिवृत्ति करण वा बादरसम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

१०—जिस स्थिति में लोभ के सूक्ष्म (छोटे) विभाग करके दबा दिये जाते हैं व नष्ट कर दिये जाते हैं उस को सूक्ष्म-सम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

११—जिस स्थिति में मोहनीय कर्म दबा हुआ (सत्ता में) रहता है परन्तु उदय में नहीं आता है उसको उपशान्तमोह गुणस्थान कहते हैं।

१२—जिस स्थिति में मोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो जाता है उसको क्षीणमोह गुण स्थान कहते हैं।

१३—तीर्थङ्करों और अन्य सामान्य केवलियों की स्थिति को—जिसमें योग रहता है सयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

१४—मोक्ष में जाने से कुछ काल पहिले की स्थिति को—जिसमें योग सर्वथा रुक जाता है—अयोगी केवली गुणस्थान कहते हैं।

बारहवाँ ।

पाँच इन्द्रियों के २२ विषय (अभिलाषायें, इच्छायें) होते हैं। इनमें से स्पर्श इन्द्रिय के आठ, रसना इन्द्रिय के पाँच, घ्राण इन्द्रिय के दो, चक्षु इन्द्रिय के पाँच और कर्ण इन्द्रिय के तीन हैं —

१—स्पर्श इन्द्रिय के आठ विषय ये हैं-हलका, भारी, ठंढा, गरम, मुलायम, खरदरा, रूखा और चिकना।

२—रसना इन्द्रिय के पाँच विषय ये हैं-खट्टा, मीठा, कडुआ, कषैला और चरपरा।

३—नासिका इन्द्रिय के दो विषय ये हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध।

४—चक्षु इन्द्रिय के पाँच विषय ये हैं—सफेद, काला, लाल, पीला और नीला।

५—श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय ये हैं--(१) जिस में जीव हो जैसे मनुष्य, पशु और पक्षी आदि ऐसे पदार्थ के शब्द को जीवशब्द कहते हैं। (२) जिसमें जीव न हो जैसे एञ्जिन और घडी आदि ऐसे पदार्थ के शब्द को अजीवशब्द कहते हैं। (३) सजीव और निर्जीव पदार्थों की मिश्रित आवाज को मिश्र शब्द कहते हैं, जैसे सरणाई और वंशी आदि।

तेरहवाँ।

मिथ्यात्व दस प्रकार के है, जिन का वर्णन निम्न लिखित हैः—

१—जीव को अजीव मानना पहिला मिथ्यात्व है।
२—अजीव को जीव मानना दूसरा मिथ्यात्व है।
३—धर्म को अधर्म मानना तीसरा मिथ्यात्व है।
४—अधर्म को धर्म मानना चौथा मिथ्यात्व है।
५—साधु को असाधु मानना पाँचवाँ मिथ्यात्व है।
६—असाधु को साधु मानना छठा मिथ्यात्व है।
७—मोक्षमार्ग सच्चा और सुखदायी है उसे झूठा और दु खदायी मानना सातवाँ मिथ्यात्व है।
८—ससारमार्ग झूठा और दु.खदायी है उसे सच्चा और सुखदायी मानना आठवाँ मिथ्यात्व है।
६—वायु आदि रूपी पदार्थों को अरूपी मानना नवाँ मिथ्यात्व है।
१०—मोक्ष आदि अरूपी पदार्थों को रूपी मानना दसवाँ मिथ्यात्व है।

चौदहवाँ ।

नव तत्व के जानने योग्य एक सौ पन्द्रह भेद हैं—इनमें से:—

१—जीव तत्व के चौदह भेद हैं-१- सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २-बादर एकेन्द्रिय, ३-द्वीन्द्रिय, ४-त्रीन्द्रिय, ५-चतुरिन्द्रिय ६-सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय, ७-असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय, ये ही सात पर्याप्त और सात अपर्याप्त भी होते हैं, इस प्रकार सब मिला कर कुल चौदह भेद हुए।

२- -अजीव के चौदह भेद हैं। १-धर्मास्तिकाय के स्कन्ध देश और प्रदेश, ये तीन भेद हैं। २-अधर्मास्ति काय के स्कन्ध, देश और प्रदेश, ये तीन भेद हैं। ३-आकाशास्तिकाय के-स्कन्ध, देश और प्रदेश, ये तीन भेद हैं। ४-काल द्रव्य का एक भेद है। ५-पुद्गलास्तिकाय के-स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु, ये चार भेद हैं।

३—पुण्य अर्थात् शुभ कर्म नौ प्रकार से बँधता है। १-सुपात्र को अन्न देने से। २-जल देने से। ३-स्थान देने से। ४-सोने के लिये पटड़ा आदि के देने से। ५—वस्त्र देने से। ६-दूसरों की भलाई सोचने से।

७-महान् पुरुषों की स्तुति करने से । ८-सेवा करने से । ९-महान् पुरुषों को नमस्कार करने से ।

४—पाप अर्थात् अशुभ कर्म अठारह प्रकार से बँधता है । १-जीव हिंसा से । २-झूठ बोलने से । ३-चोरी करने से । ४-ब्रह्मचर्य का पालन न करने से । ५ हाथी, घोड़े, धन, धान्य और अन्य पदार्थों पर ममत्व (मेरा-पन) रखने से । ६-क्रोध से । ७-मान से । ८-माया (कपट) से । ९-लोभ से । १०-राग से । ११-द्वेष से । १२-लड़ाई से । १३-किसी पर मिथ्या दोषारोपण करने से । १४-चुगली से । १५-सुख और दुःख मानने से । १६-निन्दा करने से । १७-धोखा देने के लिये झूठ बोलने से । १८-मिथ्यात्व से (सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्रों पर श्रद्धा न रखने से) ।

५—आस्रव अर्थात् कर्म आने के मार्ग बीस हैं—१-मिथ्यात्वास्रव (मिथ्यात्व के पालन करने से जो कर्म आते हैं)। २-अव्रतास्रव (व्रत के न करने से जो कर्म आते हैं)। ३-प्रमादास्रव (आत्मा की निन्दा आदि में समय खोने से जो कर्म आते हैं) । ४-कषायास्रव (क्रोध, मान माया और लोभ से जो

कर्म आते हैं)। ५-योगास्रव (मन, वचन और काय का उपयोग करने से जो कर्म आते हैं)। ६-प्राणातिपातास्रव (हिंसा करने से जो कर्म आते हैं)। ७-मृषावादास्रव (झूठ बोलने से जो कर्म आते हैं)। ८-अदत्तादानास्रव (चोरी करने से जो कर्म आते हैं)। ९-कुशीलास्रव (ब्रह्मचर्य न पालन न करने से जो कर्म आते हैं)। १०-परिग्रहास्रव (धन धान्यादि पर ममत्व रखने से जो कर्म आते हैं)। ११-श्रोत्रेन्द्रियास्रव (कानों को नियम में न रखने से जो कर्म आते हैं)। १२-चक्षुरिन्द्रियास्रव (आँखों को अनियमित रखने से जो कर्म आते हैं)। १४-रसनेन्द्रियास्रव (जीभ को वश में न रखने से जो कर्म आते हैं)। १५-स्पर्शनेन्द्रियास्रव (शरीर को वश में न रखने से अर्थात् विषयसेवन से जो कर्म आते हैं)। १६-मनआस्रव (मन को नियम में न रखने से जो कर्म आते हैं)। १७-वचनास्रव (वचन को वश में न रखने से जो कर्म आते हैं)। १८-कायास्रव (काय को वश में न रखने से जो कर्म आते हैं)। १९-भण्डोपकरणास्रव (पात्र आदि उपकरण को तथा बर्तन आदि को उठाते और रखते समय ध्यान

न रखने से जो कर्म आते हैं)। २०–कुसंगास्रव (चोर, ज्वारी, झूठे और दगाबाज आदि की संगति करने से जो कर्म आते हैं)।

६—संवर के बीस भेद हैं—(आते हुए कर्म जिससे बन्द हो जाते हैं अर्थात् रुकते हैं उसे संवर कहते हैं)। १–सम्यक्त्व संवर (सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र पर श्रद्धा रखने से जो संवर होता है)। २–व्रतसंवर (व्रत, प्रत्याख्यान करने से जो संवर होता है)। ३–अप्रमाद संवर (समय का सदुपयोग करने से जो संवर होता है)। ४–अकषायसंवर (क्रोध, मान, माया और लोभ न करने से जो संवर होता है)। ५–योगसंवर (मन, वचन और काय की योग्य प्रवृत्ति करने से जो संवर होता है)। ६–दया-संवर (दया के पालने से जो संवर होता है)। ७–सत्यसंवर (झूठ न बोलने से जो संवर होता है)। ८–अचौर्यसंवर (चोरी के न करने से जो संवर होता है)। ९–शीलसंवर (ब्रह्मचर्य के पालने से जो संवर होता है)। १०–इच्छासंवर (धन और धान्य आदि का परिमाण करने से जो संवर होता है)। ११–१५–पंचेन्द्रियसंवर (स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और

षणें, इन पाँचों को वश में रखने से जो सवर होता है)। १६-१८-गुप्तिसवर (मन, वचन और काय को वश में रखने से जो सवर होता है)। १९-उपयोगसवर (चीजों को उठाते और रखते समय ध्यान रखन से जो सवर होता है)। २०-कुसगसवर (बुरी संगति से दूर रहने से जो सवर होता है)।

७—जिससे कर्म नष्ट होते हैं व सड जाते हैं उसे निजरा कहते हैं, इसके बारह भेद हैं और ये तपके नाम से प्रसिद्ध हैं। १-अनशन तप (भोजन का त्याग कर उपवासादि करना) २-ऊनोदरी तप (भूख से कुछ कम खाना)। ३-वृत्तिसक्षेप तप (इच्छाओं को रोकने के लिए नियम करना अर्थात बारह व्रतों में से भी चौदह नियमों के द्वारा प्रवृत्ति का सकोच करना)। ४-रसत्याग तप (दूध, दही, घी, तेल, गुड, तथा पक्वान्न का त्याग करना)। ५-काय क्लेश तप (केशलोच तथा काउस्सग का कष्ट सहन करना)। ६-सलीनता तप (हाथ पैरों को स्थिर कर एक स्थान पर बैठे रहना)। ७-प्रायश्चित्त तप (जो बुरे काम हो गये हों उनके लिये अफसोस करना, गुरुकी दी हुई आलोचना-सजा, उपवासादि

सजा-तप-भोगना)। ८-विनय तप (अपने से बड़ों का आदर करना)। ९-वैयावृत्य तप (तपस्या करने वालों की सेवा करना)। १०-स्वाध्याय तप (सीखना, मनन करना, बाँचना, पूछना और धर्म-कथा करना)। ११-ध्यान तप (सतत ,विचार करना)। १२-कायोत्सर्ग तप (कर्मों का नाश करने के लिये मन, वचन और काय के योग को रोकना)।

८—कर्मों का जीवके साथ सम्बन्ध होता है उसे बन्ध कहते हैं, इसके चार भेद हैं। १-प्रकृति बन्ध (कर्म का स्वभाव)। २-स्थिति बन्ध (कर्म के रहने का नियत समय)। रस बन्ध (भला या बुरा शुभाशुभ)। प्रदेश बन्ध (कर्म के परमाणु)।

९—सब कर्मों से रहित हो जानेका नाम मोक्ष है, इसके चार भेद हैं। १-अनन्त ज्ञान (विशेषतया संसार के सब पदार्थों को जानना)। २-अनन्त दर्शन (सामान्यतया ससार के सब पदार्थों को जानना) ३-यथाख्यात चारित्र (आत्मा के गुणों में रमण करना)। ४-अनन्त वीर्य (ससार का हर एक काम करने की आत्मिक अनन्त शक्ति)।

पन्द्रहवाँ ।

आत्मा अर्थात् जीव आठ प्रकार के होते हैं—द्रव्यात्मा, कषायात्मा, योगात्मा, उपयोगात्मा, ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, चारित्रात्मा और वीर्यात्मा.—

१—शरीर, कुटुम्ब और धन आदि को जो अपना मानता है उसे द्रव्यात्मा कहते हैं ।

२—क्रोध, मान, माया और लोभ के अन्दर रहने वाले आत्मा को कषायात्मा कहते हैं ।

३—मन, वचन और काय से क्रिया करने वाले आत्मा को योगात्मा कहते हैं ।

४—बारह प्रकार के उपयोगों में वर्त्ताव करने वाले आत्मा को उपयोगात्मा कहते हैं ।

५—ज्ञान में रमण करने वाले आत्मा को ज्ञानात्मा कहते हैं ।

६—दर्शन में रमण करने वाले आत्मा को दर्शनात्मा कहते हैं ।

७—चारित्र में रमण करने वाले आत्मा को चारित्रात्मा कहते हैं ।

८—वीर्य में (आत्मिक शक्ति विशेष में) वर्त्ताव करने वाले आत्मा को वीर्यात्मा कहते हैं।

सोलहवाँ।

जिसमें जीव भटकते रहते हैं उसे दडक कहते है वह चौबीस प्रकार का हैः—

१—भुवनपति देवों के दश प्रकार हैं—असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, द्वीपकुमार उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार, और स्तनितकुमार।

२—सातों नारकियों का एक प्रकार है।

३—स्थावर के पाँच प्रकार हैं—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय।

४—विकलत्रय के तीन प्रकार हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय।

५—अवशिष्ट पाँच प्रकार ये हैं—पहिला तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का, दूसरा मनुष्य का, तीसरा व्यन्तर देव का, चौथा ज्योतिषी देव का और पाँचवाँ वैमानिक देव का, इस प्रकार से सब मिलाकर चौबीस भेद दण्डक के होते हैं।

सत्रहवाँ ।

जीव के परिणामों की एक झाई (परिच्छाया विशेष) को ले या कहते हैं, इसके छः भेद हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, ये छः हों लेश्यायें निम्नलिखित उदाहरण से भली भाँति समझ में आ जायेंगी—जामुन खाने के लिये ६ आदमी वृक्ष के नीचे आये, उनमें से एक ने कहा कि—"सारा वृक्ष ही जड़ से काट दो" दूसरा बोला—"तना (धड़) रहने दो और सब काट लो" तीसरे ने कहा कि—"जिन टहनियों पर जामुन लग रहे हैं उन्हें काट लो" चौथा बोला कि—"टहनियों को क्यों काटते हो? जामुन के झूमके तोड़ लो" पाँचवें ने कहा कि—"सिर्फ पके २ जामुन तोड़ लो" छठे ने कहा कि—"पके हुए जामुन नीचे पड़े हैं उन्हीं को खालो"। इनमें से जड़ से उखाड़ने की सलाह देने वाले की कृष्ण लेश्या है, छोटी २ डालियों को काटने के भाव वाले की नील लेश्या है, टहनियों को काटने के भाव वाले की कापोत लेश्या है, झूमके तोड़ने के भाव वाले की तेजो लेश्या है, पके २ जामुन तोड़ लेने के भाव वाले की पद्म लेश्या है, और नीचे पड़े हुए जामुन खाने के भाव वाले की शुक्ल लेश्या है।

अठारहवाँ ।

श्रद्धा व विश्वास को दृष्टि कहते हैं, यह तीन प्रकार की है। मिथ्या दृष्टि, मिश्र दृष्टि और सम्यग् दृष्टिः--

१—सच्चे तत्व को झूठा और झूठे को सच्चा मानना मिथ्या दृष्टि है।

२—सच्चे और झूठे, दोनों प्रकार के तत्वों को समान देखना मिश्रदृष्टि है। इसे सम्यग् मिथ्या दृष्टि भी कहते हैं।

३—सच्चे तत्व को सच्चा और झूठे को झूठा मानना सम्यग् दृष्टि है।

उन्नीसवाँ ।

ध्यान चार प्रकार के हैं। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान,—

१—अपनी प्यारी वस्तु का वियोग + होने से तथा शरीर में रोग होने से दुःख करना, चिन्ता करना आर्त ध्यान है।

२—हिंसा करने, झूठ बोलने या चोरी करने आदि की इच्छा करना रौद्रध्यान है।

+ जुदाई।

३—सर्वज्ञ के कहे हुए तत्वों का चिन्तन— करना धर्म ध्यान है।

४—तीर्थङ्कर तथा दूसरे केवलियों × के ध्यान को शुक्ल ध्यान कहते हैं।

बीसवाँ।

द्रव्य (पदार्थ) छः प्रकार के हैं—धर्म (जो जीव और पुद्गल को चलने में सहायता देता है) अधर्म (जो जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में सहायता देता है) आकाश (जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल को अवगाहन अर्थात् रहने को स्थान देता
चेतनाशक्ति है)। जिसमें
स्पर्श होता है)।
सैकण्ड और
तीस से
के

राजलोक व्यापी + है, काल से आदि × और अन्त — से रहित है। भाव से अरूपी है और गुण से जीव तथा पुद्गल को चलने में सहायता देता है।

२—अधर्मास्तिकाय द्रव्य—द्रव्य से एक है, क्षेत्र से चौदह राजलोक व्यापी है, काल से आदि और अन्त से रहित है, भाव से अरूपी है और गुण से जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में सहायता देता है।

३—आकाशास्तिकाय द्रव्य—द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोक‡ और अलोक॰ प्रमाण में है, काल से आदि और अन्त से रहित है। भाव से अरूपी है और गुण से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल को स्थान देता है।

४—काल द्रव्य—द्रव्य से एक समयरूप है, क्षेत्रसे ढाई द्वीप में है, काल से आदि और अन्त से रहित है, भाव से अरूपी है और गुण से पर्यायों का परिवर्तन करता है।

+ भरा हुआ है। × प्रारम्भ, शुरूआत।

– हद, आखिर (End)

‡ चौदह राजलोक। ॰ यह चौदह राजलोक से अनन्त-गुणा बड़ा है और लोक के चारों ओर है।

५—पुद्गलास्तिकाय द्रव्य—द्रव्य से अनन्त है, क्षेत्र से चौदह राजलोक व्यापी है, काल से आदि और अन्त से रहित है, भाव से रूपी है और गुण से गलने मिलने सड़ने, भिन्न होने और नष्ट होने वाला है।

६—जीवास्तिकाय द्रव्य—द्रव्य से अनन्त है, क्षेत्र से चौदह राजलोक व्यापी है, काल से आदि और अन्त से रहित है, भाव से अरूपी है और गुण से चेतना-वाला अर्थात् ज्ञान वाला है।

इक्कीसवाँ ।

जगत् में राशिसमूह दो हैं—जीवराशि और अजीव राशि—

१—समस्त चेतन पदार्थ जीवराशि में हैं—जैसे मनुष्य, हाथी और घोड़े आदि।

२—समस्त अचेतन पदार्थ अजीवराशि में हैं, जैसे मकान, चारपाई और खिलौना आदि।

बाईसवाँ ।

श्रावक के व्रत बारह हैं—पाँच अणुव्रत, तीन गुण व्रत और चार शिक्षाव्रत।

इनमें से पाँच अणुव्रत ये हैं.—

१—त्रस जीवों को मारने का सर्वथा त्याग करना और स्थावर जीवोंको निरर्थक नहीं मारने का नियम करना, यह पहिला अहिंसाणुव्रत कहलाता है।

२—कन्या के सम्बन्ध में, पशुओं के सम्बन्ध में, जमीन के सम्बन्ध में और किसी की धरोहर (स्थापन का, थापण) दबाने के लिये झूठ बोलने का परित्याग करना और झूठी गवाही देने को छोडना, यह दूसरा सत्याणुव्रत कहलाता है।

३—किसी की जेब काटने का, सैंध लगाने का, धाडा डालने का, घर फाडने का और तिजोरी तोडने का, इत्यादि बडी २ चोरियों का परित्याग करना, अर्थात् ऐसी चोरी करने का त्याग करना कि जिससे राजा दंड देता है, यह तीसरा अचौर्याणुव्रत कहलाता है।

४—परस्त्रीसम्भोग का त्याग करना और स्वस्त्रीसभोग का भी नियम करना, यह चौथा स्वदारसन्तोषव्रत कहलाता है।

५—धन, धान्य और दास, दासी आदि पदार्थों को रखने का परिमाण करना, यह पाँचवाँ परिग्रहप्रमाण अणुव्रत कहलाता है।

तीन गुणव्रत निम्नलिखित हैं'—

१—जीवन भर के लिये दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण) और विदिशाओं (आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान) और ऊर्ध्व दिशा व अधो दिशा में अमुक सीमा से आगे नहीं जाने का जो नियम करना है वह दिग्व्रत गुण व्रत कहलाता है।

२—न खाने पीने योग्य चीजों को छोडना और खाने पीने योग्य चीजों का परिमाण करना, यह भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत कहलाता है।

३—निरर्थक क्रिया करना, निन्दा करना, विकथा करना पाप का उपदेश देना, धर्मकार्य में आलस्य करना, इत्यादि कार्यों से बचने को अनर्थदण्ड विरमण गुणव्रत कहते हैं।

चार शिक्षाव्रत निम्नलिखित है —

१—सासारिक पदार्थों के विचारों को छोड कर शान्त चित्त होकर बैठना और साथ ही दो घडी तक आत्मध्यान करना सामायिक शिक्षाव्रत है।

२—दिग्व्रत का परिमाण सक्षेप करने को—जैसे आज में शहर से बाहिर नहीं जाऊगा, अथवा शहर से दो

मील के आगे नहीं जाऊगा, व मकान के बाहिर नहीं जाऊगा, इत्यादि नियम करने को देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

३—पर्व (द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी) के दिन पौषध करना पौसह व्रत व पोषधोपवास शिक्षाव्रत है।

४—नित्यप्रति सुपात्र को, अतिथि को, मुनिको भोजन देकर फिर आप भोजन करना, अथवा स्वधर्मी का पोषण करना, यह अतिथिसंविभाग शिक्षा व्रत कहलाता है।

तेईसवाँ।

मुनियों के पाँच महाव्रत होते हैं—प्राणातिपात विरमणव्रत, मृषावादविरमण व्रत, अदत्तादान विरमण व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत और परिग्रहविरमण व्रत.—

१—मन, वचन और काय से त्रस स्थावर किसी प्रकार के जीव को न मारना, न मरवाना और न मारने वाले को अच्छा समझना, यह पहिला प्राणातिपातविरमण व्रत कहलाता है।

२—मन, वचन और काय से न झूठ बोलना, न झूंठ बुलवाना और न झूठ बोलने वाले को अच्छा सम-

तीन गुणव्रत निम्नलिखित हैं —

१—जीवन भर के लिए दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण) और विदिशाओं (आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान) और ऊर्ध्व दिशा व अधो-दिशा में अमुक सीमा से आगे नहीं जाने का जो नियम करना है वह दिग्व्रत गुण व्रत कहलाता है।

२—खान पीने योग्य चीजों को छोड़ना और खान पीने योग्य चीजों का परिमाण करना, यह भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत कहलाता है।

३—निरर्थक क्रिया करना, निन्दा करना, विकथा करना पाप का उपदेश देना, धर्मकार्य में आलस्य करना, इत्यादि कामों से बचने को अनर्थदण्ड विरमण गुणव्रत कहते हैं।

चार शिक्षाव्रत निम्नलिखित हैं —

—सांसारिक पदार्थों के विचारों को छोड़ कर शान्त चित्त होकर बैठना और साथ ही दो घड़ी तक आत्मध्यान करना सामायिक शिक्षाव्रत है।

दिग्व्रत का परिमाण संक्षेप करने को—जैसे आज शहर से बाहिर नहीं जाऊंगा, अथवा शहर के

मील के आगे नहीं जाऊंगा, व मकान के बाहिर नहीं जाऊंगा, इत्यादि नियम करने को देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

३—पर्व (द्वितीया, पञ्चमी, अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी) के दिन पौषध करना पौसह व्रत व पोषधोपवास शिक्षाव्रत है।

४—नित्यप्रति सुपात्र को, अतिथि को, मुनिको भोजन देकर फिर आप भोजन करना, अथवा स्वधर्मी का पोषण करना, यह अतिथिसंविभाग शिक्षा व्रत कहलाता है।

तेईसवाँ।

मुनियों के पाँच महाव्रत होते हैं—प्राणातिपात विरमण व्रत, मृषावादविरमण व्रत, अदत्तादान विरमण व्रत, ब्रह्मचर्य व्रत और परिग्रहविरमण व्रतः—

१—मन, वचन और काय से त्रस स्थावर किसी प्रकार के जीव को न मारना, न मरवाना और न मारने वाले को अच्छा समझना, यह पहिला प्राणातिपातविरमण व्रत कहलाता है।

२—मन, वचन और काय से न झूठ बोलना, न झूंठ बुलवाना और न झूठ बोलने वाले को अच्छा सम-

झना, यह मृषावाद विरमणव्रत कहलाता है ।

३—मन, वचन और काय से न चोरी करना, न चोरी कराना और न चोरी करने वाले को अच्छा समझना, यह अदत्तादानविरमण व्रत कहलाता है ।

४—मन, वचन और काय से न मैथुन सेवन करना, न कराना और न करने वाले को अच्छा समझना, यह ब्रह्मचर्य व्रत कहलाता है ।

५—मन, वचन और कायसे न परिग्रह रखना, न रखाना और न रखने वाले को अच्छा समझना, यह परिग्रहविरमण व्रत कहलाता है ।

चौवीसवाँ ।

पाँच इन्द्रियों के सुखों को ही वास्तविक सुख समझने वाले जीव भवाभिनन्दी कहलाते हैं, यह आठ प्रकार के लक्षण वाले होते हैं --

१—अच्छा भोजन मिलेगा, अच्छे पात्र और वस्त्र मिलेंगे, लोगों में पूज्य बनूँगा और श्रावकों की संख्या बढ़ जाने से मेरा निर्वाह अच्छे प्रकार होता रहेगा, इत्यादि इच्छाओं से धर्मकृत्य करने वाला ।

२—सब प्रकार से अपने गुणों को और दूसरे के दोषों को प्रकट करने वाला ।

३—धन, धान्य, वस्त्र, पात्र तथा यश और कीर्तिको प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने वाला और इन्हीं में ध्यान रखने वाला।

४—मैं क्या करूँगा? अब क्या होगा? कुटुम्ब की कैसी दशा होगी? इस प्रकार भावी* विचारों में समय को बिताकर आत्मकल्याण का विचार न करने वाला।

५—दूसरों के गुणों को देख कर जलने वाला।

६—मेरे पास जो धन, दौलत, जेवर और मकान आदि सम्पत्ति है वह कभी अचानक ही नष्ट हो जायगी तो मेरा क्या होगा? ऐसा भय रखने वाला।

७—धोखा, छल और कपट आदि करने वाला।

८—सर्व प्रकार से अज्ञानी अर्थात् मूर्ख।

उक्त प्रकार के जीव चिरकाल तक संसारसागर में गोते खाते रहते हैं।

पच्चीसवाँ।

जिसके आचरण+ से कर्मों का क्षय होता है उसे चरित्र कहते हैं, ये पाँच प्रकारके हैं—सामायिक,

* आगे होने वाला। + व्यवहार, बर्त्ताव।

छेदो पस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूच्मसम्पराय और यथाख्यात —

१—आर्त्त और रौद्रध्यान को छोड़ कर धर्म ध्यान वा आत्मध्यान (शुक्लध्यान) करने को सामायिक कहते हैं, अथवा दीक्षा लेन कोभी सर्वविरति सामायिक कहते हैं।

२—दीक्षा लेनेके बाद चारित्र में कुछ दूषण* लगजाय तो उसके लिये प्रायश्चित्त कर फिर से शुद्ध चारित्र का पालन करने के लिये तत्पर होने को छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।

३—विशेष रूप से चारित्र का पालन कर कर्म की निर्जरा करने के लिये जोमुनि अपने समुदाय से भिन्न होकर जो तपस्या करते हैं उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।

४—लोभ के बहुत सूच्मविभाग+ कर उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न करना सूच्मसम्पराय चारित्र कहलाता है।

५—कषायरहित× आत्मायें (केवली) जो चर्या‡ करते हैं उसे यथाख्यात चारित्र कहते हैं, यह चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है।

---

* दाग। † जिनकल्पी का भी भेद इसी में जान लेना चाहिये। + खराड, टुकड़े। × कषायादि से रहित। ‡ व्यवहार।

छब्बीसवाँ ।

वस्तु के अन्दर अनेक स्वभाव होते हैं, उन्हीं में से एक "सत्" अंश को लेकर अन्य अंशों में उदासीनता रखने को नय कहते हैं, इस के सात भेद हैं—नैगम नय, संग्रह नय, व्यवहार नय, ऋजुसूत्र नय, शब्द नय, समभिरूढ़ नय और एवम्भूत नयः—

१—सब वस्तुयें सामान्य और विशेष गुण वाली हैं, ऐसा समझना नैगम नय है ।

२—सब पदार्थ सामान्य धर्मवाले हैं, क्योंकि सामान्य के बिना विशेष धर्म नहीं रहता, यह बात संग्रह नय बतलाता है ।

३—जो मुख्यतया पदार्थ के विशेष धर्म को ही स्वीकार करता है उसे व्यवहार नय कहते हैं ।

४—जो भूत और भविष्य का परित्याग कर केवल अपने ही वर्तमान भावों का ग्रहण करता है उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं ।

५—जो काल, लिङ्ग और वचन का भेद होते हुए भी एक पदार्थ वाची* अनेक शब्दों को एक ही पदार्थ सम-

* एक पदार्थ के वाचक ।

भता है उसे शब्द नय कहते हैं।

६—शब्द के कई अर्थ होने पर भी जो रूढि से अर्थ का ग्रहण करता है उसे समभिरूढ नय कहते हैं।

७—जिस समय में जो पदार्थ जैसी क्रिया को कर रहा हो उस समय में उसको उसी नाम से जो पहिचानता है उसे एवम्भूत नय कहते हैं।

सत्ताईसवाँ।

पदार्थ में आरोपण करने का नाम निक्षेप है, यह चार प्रकार का होताहै—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—

१—किसी पदार्थ को उसके आकार, गुण, जाति व क्रिया की अपेक्षा के विना अमुक सञ्ज्ञा से पहिचानना, यह नाम निक्षेप है।

२—उसी आकार के पदार्थ में व अन्य आकार के पदार्थ में वस्तु की स्थापना करने को स्थापना निक्षेप कहते हैं।

३—जिससे कार्य होता है, जिससे पर्याय बनता है, उसे द्रव्यनिक्षेप कहते हैं।

४—कार्य व पर्याय को भाव निक्षेप कहते हैं।

अट्ठाईसवाँ ।

सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र पर श्रद्धा रखने को अथवा तत्त्वार्थ की श्रद्धा को सम्यक्त्व कहते हैं— यह पाँच प्रकार का है— औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, वेदक और सास्वादनः—

१—अनन्तानुबन्धी की चौकड़ी और तीन दर्शन मोहनीय के उपशम होने से (दब जाने से) जो सम्यक्त्व होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

२—अनन्तानुबन्धी चौकड़ी और तीन दर्शन मोहनीय के नष्ट हो जाने से जो सम्यक्त्व होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

३—उक्त सातों प्रकृतियोंके रस में से जितना उदय में आता है उतना नष्ट कर देता है और शेष भाग सत्ता में ही दबा रहता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

४—क्षायिक सम्यक्त्व के पहिले रुकावट के सहित जो तत्त्वरुचि रहती है उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं ।

५—उपशम सम्यक्त्व से मिथ्यात्व में गिरते समय जो तत्त्वरुचि का एक स्वाद सा रहता है उसे सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं ।

उन्तीसवाँ ।

रस नौ प्रकार का है—शृङ्गार, वीर, करुणा, हास्य, रौद्र, भयानक, अद्भुत, वीभत्स और शान्त —

१—जिससे विषयविकार उत्पन्न होते हैं उसे शृङ्गार रस कहते हैं ।

२—जिससे शरीर में उत्साह, शक्ति और जोश उत्पन्न होता है उसे वीर रस कहते हैं ।

३—जिससे दया (अनुकम्पा) उत्पन्न होती है उसे करुणा रस कहते हैं ।

४—जिस से हँसी आती है उसे हास्य रस कहते हैं ।

५—किसी भयङ्कर पाप को देखने से व करने से जो असर होता है उसे रौद्ररस कहते हैं ।

६—जिस से भय (डर) लगता है उसे भयानक रस कहते हैं ।

७—जिससे आश्चर्य होता है उसे अद्भुत रस कहते हैं ।

८—भ्रष्ट (खराब) शब्द के सुनने से जो असर होता है उसे वीभत्स रस कहते हैं ।

९—जिससे चित्तमें सन्तोष होता है उसे शान्त रस कहते हैं ।

तीसवाँ ।

अभक्ष्य (न खाने योग्य, बाईस वस्तुएँ हैं-वडका फल, पीपल का फल, ऊंवर* का फल, पिपरी का फल, कठूवर— का फल, शहद, मक्खन, माँस, शराब, ओले, विष (अफीम, सोमल और सखिया आदि विषैली चीजें), शर्दी की अधिकता से जमा हुआ बरफ, सब प्रकार की कच्ची मिट्टी-नमक, रात्रिभोजन, बहुत बीजों वाला फल, साधारण वनस्पति, (कन्द और मूल आदि), आचार, विदल (कचे दही, दूध व छाछ के साथ बेसन, दाल आदि खाना), बैंगन, अज्ञात × फल, तुच्छ फल (चनवर आदि) और चलितरस (बासी भोजन) ।

इकतीसवाँ ।

अनुयोग चार प्रकार के हैं-द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और धर्मकथानुयोग'—

१—जिसमें छ. द्रव्य, आठ कर्म और नौ तत्व आदि का वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं ।

२—जिसमें द्वीप और समुद्र आदि के अन्दर रहने वाले पर्वत+, नदी और देश आदि की लम्बाई, चौड़ाई,

---

* गूलर । — कटहल । × अनजान । + पहाड़ ।

ऊँचाई तथा संख्या × आदि का वर्णन हो उसे गणितानुयोग कहते हैं।

३—जिसमें मुनियों और श्रावकों के आचार का वर्णन हो उस चरणकरणानुयोग कहते हैं।

४—जिसमें गत (पूर्व काल के) उत्तम और धर्मात्मा स्त्री पुरुषों का वर्णन हो उसे धर्मकथानुयोग कहते हैं।

बत्तीसवाँ ।

तत्त्व तीन प्रकार के हैं-देवतत्त्व, गुरुतत्त्व और धर्म तत्त्व—

१—जिसमें अठारह दोष (अज्ञान, निद्रा, मिथ्यात्व, राग और द्वेष आदि) न हों उसे देवतत्त्व कहते हैं।

२—पंच महाव्रतों का पालन करने वाले को गुरुतत्त्व कहते हैं।

३—जिसमें अहिंसा (दया) मुख्य होती है उसे धर्मतत्त्व कहते हैं।

तेतीसवाँ ।

समवाय (साथ में रहने वाले कारण) पाँच हैं-काल, स्वभाव, नियति, कर्म और उद्यम —

× गिनती।

१—जो जिस समय और जिस ऋतु में होता हो वह उसी समय और उसी ऋतु में हो उसे काल समवाय कहते हैं।

२—जिसका जैसा स्वभाव हो वह सदा वैसा ही रहे अर्थात् उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो उसे स्वभाव समवाय कहते हैं।

३—जो होनहार (भवितव्य) हो वही हो, उसे नियति समवाय कहते हैं।

४—पहिले किये हुए कर्मों के अनुसार ही जो सब कुछ होना है उसे कर्म समवाय कहते हैं।

५—परिश्रम (उद्योग) करना उद्यम समवाय है।

चौतीसवाँ।

जिसमें मिथ्या मार्ग (ठगी का मार्ग) हो उसे पाखण्ड कहते हैं, उसके मूल चार भेद हैं—क्रियावाद, अक्रियावाद, विनयवाद और अज्ञानवाद। इन्हीं के कुल तीन सौ त्रेसठ भेद होते × हैं:—

× इनका सविस्तर वर्णन सूत्रकृतांग (सूयगडांग) में देख लेना चाहिये।

१—केवल क्रिया के करने में ही धर्म मानना क्रियावाद कहलाता है। इसके एकसौ अस्सी भेद हैं।

२—सर्वथा अक्रिय रहने में ही धर्म मानना अक्रियावाद है। इसके चौरासी भेद हैं।

३—विनय करने से ही धर्म होता है, ऐसा मानना विनयवाद है। इसके बत्तीस भेद हैं।

४—विद्याध्ययन के न करने में ही धर्म मानना अज्ञानवाद है। इसके सड़सठ भेद हैं।

पैंतीसवाँ ।

श्रावकों के गुण इकीस होते हैं अर्थात् निम्नलिखित गुण वाले ही श्रावक होते हैं:-

१—जो तुच्छ* स्वभाव वाला न होकर समुद्र के समान गम्भीर हो।

२—जो पूरे अवयवों के सहित हो, रूपवान् हो।

३—जो शान्तप्रकृति हो और पाप न करे।

४—जो सत्यमार्ग पर चलने वाला हो।

५—जो पवित्रहृदय— हो, घातक× पापी न हो।

---

* ओछा। —शुद्ध हृदय वाला। × हिंसा करने वाला।

६—जो इस लोक और परलोक के दुःख तथा अपयश* से डरने वाला हो।
७—जो दूसरे को धोखा देने वाला (कपटी) न हो।
८—जो दूसरे को निराश करने वाला न हो और चतुर हो।
९—जो कुटुम्ब की लज्जा (मर्यादा) रखने वाला हो और बुरा काम न करे।
१०-जो सब जीवों पर दया रक्खे।
११-जो निर्मल (अविकारी) दृष्टि रखने वाला हो।
१२-जो गुणी जनों को मान† देने वाला और वन्दी या पक्ष‡ करने वाला हो।
१३-जो उत्तमोत्तम धर्मकथाओं से उपदेश देने वाला हो।
१४-जिसके कुटुम्बी धर्ममार्ग में चलने वाले हों।
१५—जो दूरदर्शिता से विचारपूर्वक काम करने वाला हो।
१६—जो पक्षपात व अन्याय से रहित होकर गुणों और दोषों का जानने वाला हो।
१७—जो अनुभवी और बुद्धिमान् मनुष्यों की सेवा करने वाला और उन की आज्ञा का पालन करने वाला हो।

---

* बदनामी। † आदर, प्रतिष्ठा। ‡ तरफदारी।